सत्याग्रहः एक पुनरावलोकन

डॉ0 राम कुमार गुप्ता*

मनुष्यों के बीच होने वाले टकरावों का शांतिपूर्वक हल कर पाने की क्षमता एक शांतिपूर्ण संस्कृति की अनिवार्य शर्त है। अधिकांश ऐतिहासिक संस्कृतियां इस दृष्टि से अक्षम ही प्रतीत होती है। अतः यह चुनौती भविष्य की संस्कृति के निर्माण की है। पिछली सदी में महात्मा गांधी द्वारा प्रदत्त सत्याग्रह की अवधारणा इस दिशा में एक प्रयास माना जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान संदर्भ में एक शान्तिपूर्ण संस्कृति के निर्माण के लिये सत्याग्रह की प्रासंगिकता पर हम पुनर्विचार करें। यही इस छोटे से लेख का उद्देश्य है। अतः हम गांधी द्वारा निर्धारित सत्याग्रह के स्वरूप का विवरण न देकर उस पर लगाये गये आरोपों के मद्द नजर उसका मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे। किन्तु इसके पहले शान्ति और संस्कृति सम्बन्धी अपनी समझ को स्पष्ट करना भी अपेक्षित है।

1. वैसे तो शांति का आदर्श उन गिने–चुने आदर्शों में से एक है जिस पर शायद ही किसी को आपत्ति हो किन्तु अधिकांशतः यह एक निरपेक्ष आदर्श, एक अप्राप्य स्वप्न का रूप ले लेता है जिसका यथार्थ ये कोई वास्ता नहीं दिखता स्वप्न और यथार्थ के बीच की दूरी को कम करने के लिये शांति के आधुनिक अध्येताओं की दृष्टि शांति प्राप्ति के तरीकों के अध्ययन करने पर केन्द्रित है। अब शांति का अर्थ युद्ध के न होने मात्र तक सीमित नहीं रह गया है क्योंकि हिंसा को व्यापक अर्थ में पारिभाषित किया जाने लगा है। व्यक्तिगत हिंसा ही हिंसा नहीं अपितु कोई भी ऐसी परिस्थिति जो मनुष्य के आत्म निर्माण में बाधक है हिंसा की कोटि में आती है। जान गाल्टुंग ने इसे ही संरचनात्मक हिंसा कहा है ''वह हंसा जो धीमे–धीमे मारती है और संरचना में निबद्ध होती है'' यह सामान्यतः दिखाई पड़ने वाली हिंसा है जो समाज की विविध संरचनाओं (आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि) में छिपी रहती है और सामाजिक अन्याय, अत्याचार, शोषण, गरीबी और अलगाव आदि के रूप में देखी जा सकती है। इसको सांस्कृतिक हिंसा भी कहा जा सकता है क्योंकि संरचनात्मक हिंसा को वैधता प्रदान करने वाले तत्त्व उसी संस्कृति से पोषण पाते हैं। इसीलिये शांति की संस्कृति के निर्माण का सवाल एक वैकल्पिक संस्कृति के निर्माण का मामला है।

संस्कृति के कई अध्येताओं को संस्कृति के पुनर्निर्माण की बात से आपत्ति हो सकती हैं क्योंकि वे संस्कृति को एक सनातन, स्थाई, सुदीर्घ, पवित्र परम्परा के रूप में स्वीकार करते हैं जिससे छेड़–छाड़ करने की कतई जरूरत नहीं है।

*दर्शन शास्त्र विभाग, टी.डी.पी.जी. कॉलेज, जौनपुर

किन्तु मेरी दृष्टि में यह उचित नहीं है। संस्कृति अतीत में खोज का ही विषय नहीं है। अपितु भविष्य के चयन का भी विषय है। यह सही है कि मनुष्य का जन्म शून्य में नहीं होता है, एक बनी बनाई संस्कृति उसे विरासत में मिलती है किन्तु वही उसकी नियति नहीं है। वह साथ ही साथ नई सांस्कृतिक संरचना के निर्माण में भी लगा रहता है। संस्कृति की यह अवधारणा उसे सृजनशील मानवीय कर्म से निर्धारित सतत् प्रवाहमान स्वीकार करती है। इसी में शांतिपूर्ण संस्कृति के निर्माण की सम्भावना देखी जा सकती है। संस्कृति शक्ति संबंधो से अलग नहीं की जा सकती क्योंकि समाज में कुछ लोगों को औरों के मुकाबले औरो के लिये संरचनात्मक बदलाव कर सकने की अधिक शक्ति प्राप्त होती है। इसलिये नई संस्कृति का निर्माण पुरानी संस्कृति में वर्चस्व पाये शक्ति केन्द्रों से टकराये बिना सम्भव नहीं है।

अतः उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सक रात्मक शान्ति की स्थापना एक सतत् प्रक्रिया है जिसके लिये संरचनात्मक हिंसा का अंत जरूरी है। यह उद्देश्य हिंसक और अहिंसक दोनों तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है। देखना यह है कि सत्याग्रह का गांधीवादी विचार इस उद्देश्य को पाने में कितना सक्षम है।

2. सत्याग्रह की व्याख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कई व्याख्याकार उसे पूरी तरह अहिंसक मानने से इन्कार करते हैं। वे उसे अहिंसक बल प्रयोग (Coercion) की संज्ञा देते है जिसमें शारीरिक ताकत का स्थान मनोवैज्ञानिक ताकत ले लेती है। उनके अनुसार सत्याग्रह में शारीरिक हिंसा का स्थान मानसिक प्रताड़ना ले लेती है।

निश्चित ही सत्याग्रह में नैतिक दबाव का स्वरूप मानसिक बल प्रयोग का ही एक रूप है। इसमें विरोधी को काफी असुविधा और तकलीफ पहुंचती है भले ही वह इरादतन न हो। नैतिक रूप से उसे परेशानी में डालना भी उसे कष्ट पहुंचाना ही है। यद्यपि यह सही है कि सत्याग्रह में किया जाने वाला बल प्रयोग अन्य हिंसक तरीकी के मुकाबले काफी कम होता है और अत्यंत सभ्य तरीके से किया जाता है। किन्तु फिर भी उसे विशुद्ध रूप से अहिंसात्मक नहीं माना जा सकता।

एक सत्याग्रही से अपेक्षित है कि उसको ईश्वर और अहिंसा में विश्वास हो, दुख सहने की सामान्य से अधिक क्षमता हो और उसका नैतिक विकास भी उच्च स्तर का हो। चूंकि सामान्यतः लोग ऐसे नहीं है इसलिये सत्याग्रह का आदर्श अव्यवहारिक है। इसी कारण स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान गांधी के नेतृत्व में चलाये गये सत्याग्रह आन्दोलन भी वीरों की अहिंसा के उनके आदर्श को न पा सके। उन्हें स्वयं मानना पड़ा कि यह केवल नाम का ही अहिंसा आन्दोलन था, वास्तव में तो यह कमजोरों का निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive resistance) मात्र था। साथ ही यह भी सच है कि सत्याग्रह तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह व्यक्ति या समूह जिसके खिलाफ आन्दोलन हो रहा है, उन्हीं नैतिक मूल्यों को स्वीकार न करता हो जो स्वयं सत्याग्रही के हैं। सोचिये तो जरा यदि ब्रिटिश

हुकूमत के स्थान पर हमारा स्वतंत्रता आन्दोलन हिटलर के नाजी शासन के खिलाफ होता? आज के सन्दर्भ में यही बात आतंकवादी हिंसा को लेकर कही जा सकती है।

यहाँ पर प्रश्न उठना समीचीन होगा कि यदि भारत का स्वतंत्रता संग्राम विशुद्ध रूप से अहिंसक आन्दोलन नहीं था तो क्या सत्याग्रह द्वारा मूलमूत सामाजिक परिवर्तन की बात सोची जा सकती है जबकि गांधी ऐसा कद्दावर अहिंसक नेता आज हमारे पास नहीं है? यदि एक बार जनता की चेतना को सत्याग्रह द्वारा उत्तेजित होने का अवसर मिल गया तो क्या वे अनन्तकाल तक अहिंसक तरीके से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये इन्तजार करते रह सकेंगे? यदि हड़ताल या बायकाट बिना घृणा के सम्भव है तो फिर हिंसा का सहारा लेना क्यों नहीं?

ऐसा नहीं है कि गांधी उपरोक्त समस्याओं से अवगत नहीं थे। सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव के साथ–साथ उन्होंने सत्याग्रह के विचार में परिशोधन भी किया। उनके सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य जनता को उसके प्रति हो रहे अन्याय के प्रति जागृत करना और उसे शांतिपूर्ण ढंग से मुक्ति संग्राम के लिये संगठित करना था। एक बार अपनी शक्ति को पहचान लेने के बाद जनता शोषणमुक्त समाज से शोषण मुक्त समाज की ओर आसानी से कदम बढ़ा सकती है। इसलिये उनका मानना था कि भारत की गुलामी का कारण अंग्रेज नहीं हम स्वयं है। इसलिये उनका मानना था कि चूंकि जमीदार स्वयं खेती नहीं कर सकते इसलिये देर–सवेर उन्हें किसानों की शर्ते मानने पर मजबूर होना ही पड़ेगा। इसी तरह उनका यह भी मानना था कि एक उद्योगपति, मजदूरों के सहयोग के बिना अपना उद्योग नहीं चला सकता इसलिये उसे भी मजदूरों के हितों की परवाह करनी ही पड़ेगी।

व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर गांधी के उपरोक्त उत्तर यथार्थवादी नही जान पड़ते। क्या एक गरीब मजदूर बिना काम के जीवित रह सकता है? क्या गरीब मजदूर किसानों को जमींदारो/उद्योगपतियों के खिलाफ अधिक दिन तक भारत ऐसे गरीब देश में संघर्ष के लिये प्रेरित किया जा सकता है जहां बेकार मजदूरों की संख्या बहुत ज्यादा है? बड़ी आसानी से जमीदार/उद्योगपति उन्हें दूसरों से बदल सकते हैं। उनके अलावा जमीदार अपने खेत न जोतकर और उद्योगपति अपने उद्योग बंद करके कुछ वर्ष तो अवश्य ही सुविधापूर्वक जी सकते हैं जबकि एक गरीब किसान या मजदूर बिना काम किये कुछ दिन से ज्याद जीवित नहीं रह सकता। सच तो यह है कि हल के रूप में गांधी द्वारा सुझाया गया ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की असफलता उनके सत्याग्रह के सिद्धान्त पर भी एक प्रश्न चिन्ह लगा देती है।

3. सत्याग्रह की उपरोक्त आलोचना के सन्दर्भ में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि क्या सत्याग्रह पूरी तरह विफल प्रयोग है जबकि सत्याग्रह का हथियार दक्षिण अफ्रीका की विशिष्ट परिस्थितियों में उपजा और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रयोग द्वारा सिद्ध किया गया। इसके प्रयोग की भी वैधता तभी मानी गई जब अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में अन्य सभी प्रकार के शांतिपूर्ण प्रयास असफल हो चुके

हैं। दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका के अश्वेत विरोधी आन्दोलनों में इसका व्यापक रूप से सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ। आज भी देश–विदेश में चल रहे विभिन्न सामाजिक आन्दोलनो जैसे चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओ अभियान जर्मनी के पर्यावरण संरक्षण ग्रीन आन्दोलन पर इसकी छाप स्पश्ट रूप से देखी जा सकती हैं। अतः विशिष्ट परिस्थितियों में सत्याग्रह की सीमित असफलता से आज भी इन्कार नहीं किया जा सकता, हाँ उसका प्रयोग करने से पूर्व गांधी के समान ही सामाजिक परिस्थितियों का समग्र अध्ययन तो जरूरी है ही साथ ही सत्याग्रही का नैतिक उत्थान भी आवश्यक है। अक्सर हम परिस्थितियों के बदलाव की चर्चा करते समय उसमें मनुष्य के नौतिक स्खलन को भूल जाते हैं। आज भी बहुत से एसे सामाजिक मुद्दे हैं जिन पर सार्थक रूप से सत्याग्रह चलाया जा सकता है किन्तु उन पर समर्पित भाव से संघर्ष करने वाले सत्याग्रहियों का तो अकाल सा है। ऐसा क्यूँ हमें हुआ इस पर भी थोड़ा विचार करना चाहिये।

जहां तक सत्याग्रह में बल प्रयोग की बात हैं, गांधी के पक्ष में एक बात कही जा सकती है कि वे अटूट ''शान्तिवादी'' (pacifist) नहीं थे। युद्ध का विरोध और शांति का पक्ष लेते हुए भी उन्होंने सैनिक सुरक्षा को कायरतापूर्ण समर्पण के आगे वरीयता प्रदान की। इसलिये विदेशी हमले या खूनी आतंकवाद के सामने केवल शान्तिपूर्ण सत्याग्रह की बात करना बेमानी है।

आज जिस भूमंडलीय पूंजीवाद में हम सांस ले रहे हैं वह अधिकतम लाभ और पूंजी निर्माण कर टिका हैं। उसमें व्यक्ति के जीवन का का एकमात्र अधिकतम उपभोग हो गया है जबकि सत्याग्रही क लिये आत्मसंयम और आत्म त्याग अनिवार्य है। इसीलिये हमें गांधी के सत्याग्रह को पश्चिमी सभ्यता की उनकी आलोचना से अलग करके नहीं दखना चाहिये। दरसल सत्याग्रह का उद्देश्य एक नयी सभ्यता का निर्माण ही हैं जो हिंसा नहीं प्रेम पर टिकी हो, जिसमें आपसी मतभेदों को संवाद द्वारा निपटाया जाता हो, बल प्रयोग द्वारा नहीं। इक्कीसवीं सदी की मुख्य चुनौती ही यही है कि हम पश्चिमी आधुनिकता की समुचित आलोचना द्वारा सभ्यता–संस्कृति का उपरोक्त प्रारूप गढ़ सकें। सत्याग्रह की प्रासंगिकता इसी में है कि हम निजी और सामाजिक स्तर पर महज तमाशाबीन बने रहने के स्थान पर अन्याय के विरूद्ध अपना नैतिक हस्तक्षेप दर्ज कर सकते हैं।

दूसरा सवाल यह भी है कि यदि सत्याग्रह असफल है तो फिर सामाजिक टकरावों की शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने का दूसरा दूसरा रास्ता क्या है या हो सकता ? क्या विशेष परिस्थितियों में हमें क्रान्तिकारी हिंसा को भी न्याय प्राप्ति के हथियार के रुप में स्वीकार नहीं करना चाहिए? यदि इसका उत्तर न है तो फिर क्या गांधी के प्रशंसको के सामने आज यह सबसे बड़ी चुनौती नहीं है कि सत्याग्रह का नया सृजनात्मक स्वरूप विकसित करें जो युगीन सन्दर्भ में उसे प्रासंगिक बना सके?

****